The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 2 | February 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

निर्गुणाकार : नामदेव का सार

पूजा कुमारी, विद्यार्थी सह शोधार्थी

स्नातकोत्तर, हिंदी प्रतिष्ठा चतरा महाविद्यालय चतरा (वि.भा.वि हजारीबाग,झारखण्ड -825401)

ईमेल - pujasahni31@gmail.com

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 27-02-2025

Published: 14-03-2025

ABSTRACT

साहित्य समाज के प्रत्येक पृष्ठभूमि में होने वाले क्रमिक परिवर्तन व विकास को समझने के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करता है और यह पर्याप्त आधार वहां की जनता की बदलती प्रवृत्तियों के परिवेश से प्राप्त होता है । इसप्रकार काल व परिस्थितियों की भांति किसी भाषा का साहित्य भी गतिवान होता है। "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है , तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ - साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"1 अतः इसलिए हिंदी साहित्य के 900 वर्षो के इतिहास को बदलती परिस्थितियों के आधार पर कई कालखंडों में विभाजित किया गया तथा सम्बंधित युगीन प्रवृत्तियों को केंद्र में रखकर कई नामकरण भी किए गए।

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.15031963

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को क्रमशः आदिकाल (वीरगाथा काल) , पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल), उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) व आधुनिक काल (गद्यकाल) के रूप में चार खण्डों में विभाजित किया है ।

पूर्वमध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल का युग हिंदी साहित्य में विशेष महत्व रखता है। इसलिए पाश्चात्य भाषाविद डॉ. ग्रियर्सन ने भक्तिकाल को ' हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग ' कहा है ।

हिंदी साहित्य में आदिकाल के पश्चात् भक्तिकाल के प्रारंभ को लेकर कई विद्वानों ने अपने - अपने मत दिए । इस संदर्भ में साहित्य जगत के दो विद्वानों के मतों को समझा जाएं तो एक ओर जहां आचार्य रामचंद शुक्ल जी ने भक्तिकाल का उद्भव , देश में मुस्लिम साम्राज्य के आधिपत्य के साथ - साथ हिंदुओं के देवालयों व उनकी मूर्तियों के खंडन - मंडन से उत्पन्न अशांति से हताश लोगों के हृदय में ईश्वर की भक्ति का एकमात्र मार्ग के रुप में माना है तो वहीं दूसरी ओर हजारीप्रसाद द्विवेदी जी भक्तिकाल का आरम्भ सैकड़ों वर्षों के मेघखंड के रुप में एकत्रित किसी विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए एक पूर्वनिर्धारित स्वाभाविक घटना के रूप में मानते है । जिसकी प्रेरणा लोगों के हृदय में अपने ईश्वर के प्रति अनन्य आस्था व भक्ति से मिली है। **"चौदहवीं शताब्दी से पूर्व के साहित्य ने कोई नई प्रेरणा नहीं दी । किंतु नया साहित्य मनुष्य - जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्श को लेकर चला। यह लक्ष्य है भगवद्भक्ति , आदर्श है शुद्ध सात्विक जीवन और साधन है भगवान के निर्मल चरित्र और सरस लीलाओं का गान । इस साहित्य को प्रेरणा देनेवाला तत्व भक्ति है, इसीलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सब प्रकार से भिन्न है।"2**

आगे चलकर भक्तिकाल ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकार करने वाले सगुणालंकार व ईश्वर को निर्गुण - निराकार के रूप में स्वीकार करने वाले निर्गुणालंकार नामक दो शाखाओं में विभाजित हो जाता है। सगुणधारा को प्रवाहित करने वालों में से जिस प्रकार रामानंद , तुलसीदास , वल्लभाचार्य व सूरदास आदि सनातनी विभूतियों को प्रतिनिधित्व मिला । उसी प्रकार निर्गुणधारा का सूत्रपात करने में संत नामदेव का स्थान कबीर के पूर्व माना जाता है । यद्यपि यह तथ्य सहज स्वीकार्य है कि ईश्वर के निर्गुणालंकार स्वरूप के भीतर छिपे अगाध प्रेम, योग, धर्म व कर्म को समाज में महिमा मंडित करने का श्रेय संत कबीर को जाता है तथापि भक्ति के निर्गुण निराकार स्वरूप के आस्था के बीज संत नामदेव ही बोए थे । जिसे पोषित कर फलदायी कबीर बनाएं। **"नामदेव कबीर के पूर्ववर्ती निर्गुण भाव के साधक थे। कबीर ने अपनी पुस्तकों में बड़े गौरव के साथ इनका नाम लिया।"3**

सामान्य परिचय

संत नामदेव का जन्म 26 अक्टूबर 1270 इस्वी में महाराष्ट्र के सतारा जिलें में नरसी बामणी नामक गांव में हुआ । इनके पिताजी दामाशेट बड़े भक्त तथा पेशे से दर्जी थे। इनकी माता गोणाई देवी भी गृहस्थ जीवन के साथ धार्मिक व आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करती थी। संत नामदेव का विवाह राधाबाई नामक एक धार्मिक स्त्री से हुई थी जिससे 'नारायण' पुत्र प्राप्त हुए।

इनका पूरा परिवार धार्मिक वातावरण से संलग्न तथा भगवान विट्ठल के परम भक्त थे। जिसके लिए सभी अक्सर पंढरपुर की यात्रा किया करते थे संत नामदेव का बचपन समस्त परिवार के साथ भगवान विट्ठल की भक्ति व धार्मिक वातावरण में बीता था। अतः उनके अंदर भी भक्ति के बृहत सागर की सृष्टि होना स्वाभाविक था।

माना जाता है कि प्रारंभ में संत नामदेव को ईश्वर के सगुण साकार स्वरूप में आस्था थी। संत ज्ञानेश्वर से ईश्वर का निर्गुण निराकार रूप में सर्वव्यापी होने की शिक्षा मिलने पर वे निर्गुणाकार की ओर प्रवृत होने लगें। संत ज्ञानेश्वर इनकी सगुण भावधारा की भक्ति को एकांगी मानते थे साथ ही निर्गुण पक्ष की अनुभूति न होने पर उनकी भक्ति को अपरिपक्व की संज्ञा देते थे। उन्होंने नामदेव को निर्गुणभिमुख करने के लिए कई प्रयत्न किए। इसके अंतर्गत ज्ञानदेव का अपनी बहन मुक्ताबाई के द्वारा आयोजित संत परीक्षा की कथा प्रसिद्ध है । संत ज्ञानदेव नाथपंथ के योगमार्ग में दीक्षित थे। अतः नामदेव को इस पंथ में सम्मिलित करने के लिए संत परीक्षा के अंतर्गत ज्ञानदेव अन्य नाथपंथियों के साथ कुम्हार के पीटना से चोट खाकर भी अविचलित रहे परंतु जैसे ही कुम्हार पीटना लेकर संत नामदेव की ओर बढ़े , वे तुरन्त बिगड़ खड़े हुए। अतः संत नामदेव की भक्ति अपरिपक्व सिद्ध की गई । इस प्रकार कहा जाता है कि **"नामदेव सीधे - साधे सगुण भक्ति मार्ग पर चले जा रहे थे पर पीछे उस नाथपंथ के प्रभाव के भीतर भी ये लाए गए, जो अंतर्मुख साधना द्वारा सर्वव्यापक निर्गुणब्रह्म के साक्षात्कार को ही मोक्ष का मार्ग मानता था । लाने वाले थे ज्ञानदेव।"4**

संत नामदेव की उपासना

संत नामदेव की भक्ति भावना सगुण - निर्गुण की सीमाओं से परे विविधताओं से युक्त थी । एक ओर जहां उन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु विसोवा खेचर के सानिध्य में ईश्वर के निराकार स्वरूप को आत्मसात् किया तो वहीं दूसरी ओर सगुणालंकार भक्ति की कुछ प्रवृतियों को भी सहज स्वीकार किया ।इसी प्रकार भगवान विट्ठल के परम भक्त होने के कारण नित्य उनकी भक्ति में सेवा उपवास करते थे तो दूसरी ओर धार्मिक कर्मकांडो व रूढ़िगत बाह्य आडंबरों के प्रति अनासक्त भी थे । अतः हम देखते है कि संत नामदेव की आस्था किसी एक शाखा से जड़युक्त नहीं है अपितु इनकी भक्ति साधना में कई पंथों की प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण मिलता है ।जिसका प्रमुख कारण संत नामदेव का अपने समकालीन विभिन्न पंथों के साथ संपर्क व सानिध्य का वातावरण माना जा सकता है **। "मूल रूप से संत नामदेव निराकार ईश्वर के उपासक है लेकिन उन्होंने पूर्तिपूजा को भी साधना में सहयोगी माना । उनके कालखंड में नाथ और महानुभव का महाराष्ट्र में प्रचार था। नाथपंथ अलख निरंजन की योगपरक साधना का समर्थक तथा बाह्य आडंबरों का विरोधी था और महानुभव पंथ वैदिक कर्मकांड तथा**

बहुदेवोपासना का विरोधी होते हुए भी मूर्तिपूजा को सर्वथा निषिद्ध नहीं मानता था । इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र में पंढरपुर के विठोबा की उपासना भी प्रचलित थी।"5

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि संत नामदेव पर भक्ति के सगुण व निर्गुण दोनों स्वरूपों की प्रवृति कैसे मुखरित हुई?

जिस प्रकार से इन्होंने ईश्वर के दोनों स्वरूपों को सहज संतुलन के साथ अपनी भक्ति में स्थान दिया, वह दुर्लभ प्रतीत होता है। एक ओर जहां इन्होंने ईश्वर के साक्षात् रूप की भक्ति को अपने हृदय में स्थान दिया वहीं दूसरी ओर ईश्वर को निर्गुण निराकार मानकर उनकी सर्वव्यापक व सर्वात्मा होने की पुष्टि कर अपने अंदर ही उन्हें अनुभूत किया। इस संदर्भ में उनकी कुछ पंक्तियां उल्लेखित है -

निर्गुणसगुण नाही जया आकार।

होऊनि साकार तोचि ठेला।।

पांडुरंगी अंगे सर्व झाले जग ।

निववी सर्वांग नामा म्हाणे।।6

अर्थात् हमारे इष्टदेव सगुण व निर्गुण के बंधनों से मुक्त है । उनकी व्यापकता सर्वत्र इस प्रकार फैली है कि उन्हें किसी आकार में ढालना संभव नहीं है तथा उनका वही निराकार स्वरूप उनकी महिमा से विभिन्न आकार को ग्रहण कर सगुण को भी सिद्ध करते है । अतः हमारे पांडुरंग के अस्तित्व में सीमितताएं नहीं है अपितु वे तो समस्त विश्व की चेतना में समाहित है । जिनके स्मरण मात्र से उनकी अनुभूति परमसुख प्रदान करती है ।

गुरु का सानिध्य

यह पूर्वविदित है कि प्रारंभ में संत नामदेव सगुणोपासक थे। कहा जाता है कि वे बिना गुरु का सानिध्य प्राप्त किए स्वाभाविक अनुभूति के आधार पर ईश्वर के सगुण धर्म को आत्मसात् किए थे । इस प्रकार गुरु के अभाव में नामदेव ईश्वर की सर्वव्यापकता व अखण्ड दिव्यता से अपरिचित थे । इसके संदर्भ में एक कथा प्रचलित है जिसके उपरांत संत नामदेव की भक्ति साधना निर्गुणभिमुख हो जाती है । कहा जाता है .. एक बार स्वयं भगवान विट्ठल संत नामदेव के समक्ष फकीर मुसलमान बनकर आएं, जिन्हें नामदेव पहचान नहीं पाएं । बाद मे ज्ञात होने पर कि वे उनके आराध्य थे ,उन्हें गहरा आघात पहुंचा। इसके पश्चात् ईश्वर की सर्वसता को स्वीकार कर अपनी साधना को पूर्णरूप

देने के लिए संत नामदेव नागनाथ शिव मंदिर में एक नाथपंथी कनफटे विसोवा खेचर (खेचरनाथ) से दीक्षा ले ली और निर्गुणोपासना की ओर प्रवृत्त हो गए। गुरु खेचरनाथ का सानिध्य प्राप्त करने के पश्चात्। संत नामदेव कहते है –

मन मेरी सुई, तन मेरा धागा।

खेचर जी के चरण पर नामा सिंपी लागा।।

निर्गुणोपासना

अब संत नामदेव का भक्तिमार्ग एकेश्वरवाद के दृढ़ स्वरूप को लेकर गतिशील हुआ जो कभी एकांग होकर ब्रह्मवाद की स्तुति करता तो कभी पैगम्बर ख़ुदा की । भक्ति साधना में इसे ही ' निर्गुणपंथ ' कहा गया । जिसमें ईश्वर के असीमित अस्तित्व के साथ - साथ भक्ति के व्यापक साधना की सृष्टि हुई ।जिसके अंतर्गत समस्त बाह्य रूढ़िगत आडंबरों का बहिष्कार, गैर - तार्किक कर्मकांडो से सजगता, जातिवाद व श्रेष्ठता की वैमनस्यता का त्याग कर ईश्वर के सानिध्य हेतु भक्ति साधना के लिए मनुष्य मात्र के सार्वभौमिक अधिकार को स्वीकार करना शामिल है । उक्त पुनीत भाव का सूत्रपात सर्वप्रथम भक्तिमार्ग के अंतर्गत महाराष्ट्र में संत नामदेव द्वारा ही किया गया । अतः इसलिए महाराष्ट्र के साधकों में नामदेव का स्थान पहले आता है।

रचना

संत नामदेव मराठी भाषा में लगभग 2500 अभंगो की रचना किए जिसे सकल संत गाथा में संकलित किया गया है। साथ ही गुरुग्रंथ साहिब में भी इनके 61 पदों को स्थान दिया गया है ।इन सब के अतिरिक्त इनकी हिंदी रचनाएं भी मिलती है जिसमें से कुछ सगुणाभिमुख है तो कुछ निर्गुणाभिमुख।

संत नामदेव के सगुण भक्ति पदों की भाषा परम्परागत ब्रजभाषा के रूप में मिलती है। जैसे -

"दसरथरायनंद राजा मेरा रामचंद।

प्रणवे नामा तत्व रस अमृत पीजै।।"

जबकि इनके निर्गुण भक्ति पदों की भाषा साधुक्कडी मानी जाती है।

जैसे - "हिंदू पुजै देहरा, मुसलमान मसीद।

नामा सोई सेविया जहं देहरा न मसीद।।"

संत नामदेव की निर्गुण साधना समाज में निराकार भक्ति का अलख जगाकर समस्त चराचर को भक्ति की गहनता से इस प्रकार मंडित किया जिसकी महत्ता आज भी जीवंत है । इन्होंने अपनी साधना से न सिर्फ़ आध्यात्म के निर्गुण नवीन स्वरूपों को आकार दिया बल्कि समाज में कई नैतिक व मानवीय मूल्यों को पोषित किया । इनके निर्गुण साधना की महत्ता के साथ -साथ कुछ चमत्कार भी प्रसिद्ध हैं जो इनकी साधना शक्ति की व्यापकता को बताता है।

चमत्कार

- बालपन में भगवान विट्ठल के प्रति अगाध आस्था व विश्वास से उन्हें भोग स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देना।
- पूर्वाभिमुख नागनाथ मंदिर में कीर्तन करने से वहां के पंडित द्वारा आपत्ति करने पर नामदेव का मंदिर के पश्चिम की ओर चले जाना, जिसके कारण मंदिर के द्वार का पश्चिमाभिमुख हो जाना ।
- अपनी साधना शक्ति से मृत गाय को जीवित कर देना ।

प्रमुख पंक्तियां

ईश्वर के अस्तित्व की व्यापकता को महिमा मंडित करते हुए संत नामदेव कहते हैं -

तुझिया सतेने वेदासी बोलणे ।

सूर्यासी चालणे तुझिया बट्टे ।।

ऐसा तू समर्थ ब्रह्माडाचा धनी ।

वर्म हैं जाणुनि शरण आलों ।।

मेघानी वर्षाये पर्वती बैसाके ।

वायुने बिचरावे सते तुझे ।।

नामा म्हणे काड़ी न हाले साचार ।

प्रभु तू निर्धार पांडुरंगा ।।

व्याख्या- संत नामदेव अपने पांडुरंग(आराध्य) की महिमा बताते हुए कहते है कि समस्त विश्व की चेतना में समाहित होने वाले मेरे भगवन् तुमसे ही हमारे वेदशास्त्रों की वाणी मुखरित हुई। तेरे ही कारण दिनकर सूर्योदय व

सूर्यास्त करने में सक्षम है। समस्त ब्रह्मांड को संचालित करने की शक्ति तुझमें ही निहित है। यह सत्यानुभव कर मैं तुम्हारे शरण में आया हूं। पर्वतों पर बसकर मेघों का बरसना, पवनों का प्रवाहित होना सब तुम्हारी कृपा पर ही निर्भर करता है। हे ईश्वर! तुम्हारी आज्ञा के बिना तो संसार की प्रत्येक क्रिया शून्य अवस्था में है।

ईश्वर की भक्ति के लिए अपने अंतर्मन की साधना पर ज़ोर देते हुए तथा बाह्य कर्मकाण्डों का विरोध करते हुए कहते है -

तीरथ जाऊं न जल मैं पैसू जीवगंत सताऊंगा।

अठसठि तिरथि गुरु लखाए घट ही भीतरि न्हाऊंगा ।।

व्याख्या - संत नामदेव कहते है कि वे ईश्वर की साधना के लिए तीर्थयात्रा पर जाकर पवित्र नदियों में स्नान आदि करने के कर्मकाण्डों पर विश्वास नहीं रखते परंतु वे संसार के समस्त जीवजंतु जिसमें ईश्वर निहित है , को कभी सताते भी नहीं है। आगे कहते है कि वे अपने गुरु की महिमा से अट्ठासी तीरथ (ईश्वरीय अनुभूति) को अपने अंदर ही पाते है जिसमें स्नान कर उन्हें परमसुख की प्राप्ति होती है ।

ईश्वर का सानिध्य पाने के लिए वे उनकी सांसारिक सेवा सत्कार से अधिक उन पर सच्ची आस्था को महत्व देते है । वे कहते हैं -

सेवा पूजा सुमिरन ध्यान ।

झूठा की जैबिन भगवान ।।

तीरथ वरत जगत की आस ।

फोकट की जैबिन बिसवास ।।

व्याख्या - संत नामदेव कहते है कि जब तक हमें बिना शर्त अपने ईश्वर पर सच्ची आस्था न हो तब तक उनकी साधना में किए जाने वाले सभी धार्मिक कर्मकाण्ड व्यर्थ सिद्ध होते हैं। ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग उन्हें अपने अंतर्मन से अनुभूत कर स्वीकार करना है ।

भक्ति साधना के लिए किए जाने वाले धार्मिक कर्मकाण्डों की आलोचना करते हुए संत नामदेव कहते है -

एकै पाथर की जैभाऊ ।

दूजै पाथर धरिए पाऊ ।।

जेइहु देऊ, तरु उहू भी देवा ।

कहि नामदेव हम हरि की सेवा ।।

व्याख्या - संत नामदेव कहते है कि एक पत्थर को ईश्वर मानकर उसकी पूजा की जाती है जबकि दूसरे पत्थर पर लोग अपने पांव रखते हैं। आगे वे ईश्वर की सर्वव्यापकता को बताते हुए दोनों पत्थरों में ईश्वर का वास मानते हैं। अतः वे ऐसे कर्मकाण्डों से बचकर समस्त चराचर की भक्ति करते है जिसमें ईश्वर का वास है ।

निष्कर्ष - हमारी संस्कृति में भक्ति की साधना की महत्ता प्राचीनकाल से अब तक समस्त विश्व में अपनी जीवंतता लिए हुए है । विविधताओं से युक्त भारत की विशेषता है कि यहां विभिन्न भक्ति साधना की पद्धतियों से अपने इष्टों का सानिध्य प्राप्त होता है। भक्ति का मार्ग चाहे सगुण हो या निर्गुण समस्त संसार को एक ही उद्देश्य से बांधे हुए है ।अतः ईश्वर के निर्गुण निराकार की भक्ति में संत नामदेव की योगसाधना चिरस्थायी होकर समस्त विश्व को आध्यात्म की एकता में पिरोकर सदैव जनकल्याण करता रहेगा ।

संदर्भ-

1.हिंदी साहित्य का इतिहास , संपादक - आचार्य रामचंद शुक्ल, प्रकाशन -प्रभात प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली -110002, संस्करण -2024, पृष्ठ सं -15

2. हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, संपादक - हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशन - राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली -110002, संस्करण -23वां, पृष्ठ सं -71

3.हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, संपादक - हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशन - राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली -110002, संस्करण -23वां, पृष्ठ सं-73

4.हिंदी साहित्य का इतिहास , संपादक - आचार्य रामचंद शुक्ल, प्रकाशन -प्रभात प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली -110002, संस्करण -2024 , पृष्ठ सं -72

5. संत नामदेव चालीसा एवं दैनिक उपासना पद्धति ,डॉ. अनीता उन्मुक्त, प्रकाशन - उत्कर्ष प्रकाशन , मेरठ कैंट - 250001 (उत्तर प्रदेश), प्रथम संस्करण -2022, पृष्ठ सं - 6

6. सबका नामदेव, सरश्री तेजपारखी, प्रकाशन - वॉव पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण - प्रथम (2019), अध्याय - 23